ISSN: 2456–5474 RNI No.UPBIL/2016/68367 Vol.-6* Issue-5* June- 2021
Innovation The Research Concept

पूर्व मध्यकालीन उत्तर भारत में जाति व्यवस्था का अध्ययन

A Study of the Caste System in North India During the Early Medieval Period

Paper Submission: 05/06/2021, Date of Acceptance: 22/06/2021, Date of Publication: 23/06/2021

अरविन्द कुमार चौधरी
पूर्व शोध छात्र,
प्राचीन इतिहास विभाग,
डॉ0 राम मनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय, अयोध्या,
उत्तर प्रदेश, भारत

सारांश

पूर्वमध्यकाल में भारतीय समाज में जातियों की संख्या में वृद्धि सर्वाधिक महत्वपूर्ण सामाजिक परिवर्तन था। जातियों की संख्या में वृद्धि व्यवसाय स्थान क्षेत्र आदि के आधार पर हो रही थी। मुसलमानों के बाह्य आक्रमण से तथा समाज की आन्तरिक अव्यवस्था ने पारस्परिक श्रेष्ठता शौचाचार, धार्मिक सक्रियता आदि ने नई जातियों के उत्पन्न होने के लिए अनुकूल कारक उपस्थित किया। अनुलोम प्रतिलोम वैवाहिक सम्बन्ध के अतिरिक्त वैध तथा अवैध स्त्री पुरुष सम्बन्ध ने अनेक ऐसी मिश्रित जातियों को जन्म दिया जिन्हें चातुर्वर्ण्य व्यवस्था में नयी जाति के रूप में मान्यता प्राप्त हुई।

The increase in the number of castes was the most important social change in Indian society during the pre-medieval period. The increase in the number of castes was happening on the basis of occupation, place, area etc. The external aggression of the Muslims and the internal disorder of the society, mutual superiority, toilet, religious activism, etc., presented favorable factors for the emergence of new castes. In addition to the Anuloma Pratiloma matrimonial relationship, legal and illegal male and female relations gave rise to many such mixed castes which were recognized as a new caste in the Chaturvarna system.

मुख्य शब्द : जाति व्यवस्था, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, कायस्थ, वर्णव्यवस्था, अस्पृश्यता, पूर्वमध्यकाल।

Caste system, Brahmin, Kshatriya, Vaishya, Shudra, Kayastha, Varna system, untouchability, pre-medieval period.

प्रस्तावना

प्राचीन काल से प्रचलित सामाजिक स्तरीकरण को भारतीय परम्परा में जाति व्यवस्था कहते है। जाति का शाब्दिक अर्थ 'उत्पन्न करना' या 'उत्पन्न होना' होता है। जन्म से समान गुण, धर्म वाली वस्तुओं को एक जाति कहा जाता है। जाति समानता के आधार पर किसी एकत्रण को इंगित करती है। सामाजिक संगठन के सन्दर्भ में जाति का विशेष अर्थ होता है। उस अर्थ में भारतीय समाज के पीढ़ी दर पीढ़ी समान व्यवसाय करने वाले अर्न्तविवाही समूहों को जाति या कास्ट कहते है।

अध्ययन का उद्देश्य

भारतीय सामाजिक व्यवस्था की वास्तविक स्थिति तथा उसके महत्व को समझनें की दृष्टि से जाति व्यवस्था का अध्ययन महत्वपूर्ण है। इस शोध पत्र का मुख्य उद्देश्य भारत में जातियों का उद्भव तथा उनके विकास के पीछे अन्तर्निहित कारणों को जानकर सामाजिक जाति-पाति तथा भेदभव की भावना को तथा समाज में व्याप्त सत्य सम्बन्धी भ्रामक धारणाओं को दूर करने में सहायता ली जा सकती है। महत्वपूर्ण तथ्य है कि प्रारम्भ में वर्णव्यवस्था गुणों पर आधारित थी, जन्म पर आधारित जाति व्यवस्था का उद्भव समाज की देन है। जो सामाजिक स्तरानुक्रम स्वाभाविक रूप से विकसित हुआ है। किन्तु मूलतः मनुष्य समान है समाज में ऊँच नीच की भावना के पीछे कोई दैवीय कारण नहीं है अस्पृश्यता की भावना के पीछे सामाजिक आर्थिक और सांस्कृतिक हीनता प्रमुख कारण था। सभ्य समाज में ऐसी कुप्रथाओं के लिए कोई स्थान नहीं है। अस्पृश्यता की भावना से प्रभावित लोगों को सामाजिक आर्थिक तथा सांस्कृतिक दृष्टि से शक्तिशाली बनाकर इस बुराई को दूर किया जा सकता है।

विषय विस्तार

भारतीय जाति व्यवस्था की उत्पत्ति किसी एक कारण से नहीं हुई। इसके अनेक कारण थे। भौगोलिक, सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक और आर्थिक। जादू टोने में विश्वास, निषिद्ध वस्तुओं के सेवन, आत्मा के स्वरूप के विषय में विभिन्न विचारों से भी जातियों की उत्पत्ति हुई।

उपनिषदों और महाभारत से विदित होता है कि चातुर्वर्णों के अतिरिक्त समाज में अनेकानेक जातियाँ थीं, जिनकी उत्पत्ति अनुलोम और प्रतिलोम जैसे अन्तर्जातीय विवाह से हुआ था।

ऐसी विभिन्न जातियाँ तत्कालीन समाज में सवर्णता या अवर्णता का बिना ध्यान रखे ही कुछ लोगों द्वारा, विवाह सम्बन्ध स्थापित करके उत्पन्न हुई थीं। धर्मसूत्रों में भी ऐसी विभिन्न जातियों का उल्लेख है जो अनुलोम-प्रतिलोम विवाह से उत्पन्न हुई थी।

अनेक स्मृतिकारों के अनुसार भी विविध जातियों की उत्पत्ति अन्तर्वर्णीय विवाह से ही हुई थी। मनु के अनुसार ऐसे विवाह से उत्पन्न सन्तान वर्णसंकर कही गयी। सूत्रकारों ने संकरत्व का उल्लेख किया है।

बृहस्पति ने भी अनुलोम और प्रतिलोम दोनों प्रकार के विवाहों को वर्ण संकरता का कारण माना है। पूर्व मध्ययुग तक आकर वर्णसंकर जातियों की संख्या 64 हो गयी।

पूर्वमध्य काल में हिन्दू सामाजिक वर्ण-व्यवस्था में वर्णों के अंतर्गत अनेक प्रकार हो गए। उदाहरण के लिए अनेक प्रकार के ब्राह्मण हो गए, क्षत्रिय हो गए, वैश्य हो गए और शूद्र हो गए। मध्ययुग तक आकर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र वर्णों के अनेक प्रकार विकसित हो गए। कम से कम 34 प्रकार के ब्राह्मण हो गए, 36 प्रकार के क्षत्रिय और 84 प्रकार की वणिक् जातियाँ। 36 प्रकार के क्षत्रियों का उल्लेख राजतरंगिणी में हुआ है। क्षत्रियों की तीन प्रकार की श्रेणियाँ निर्धारित की गई थी- (1) सत्क्षत्रिय (2) सुक्षत्रिय और (3) शुद्ध क्षत्रिय।

गुप्तोत्तर काल में ब्राह्मण में पूर्णतया जन्म के आधार पर उनकी जाति मानी जाने लगी। 'कान्हड़दे-प्रबंध' के लेखक पद्मनाभ ने अपने को 'विसल नगरा' ब्राह्मण कहा है। उसी ने लिखा है: 'श्रीमाल' ब्राह्मणों की तत्कालीन समाज में बहुत प्रतिष्ठा थी। लक्ष्मीधर ने अपने ग्रंथ 'विरुद्ध-विधि विध्वंस' में 'सागर' ब्राह्मणों का उल्लेख किया है और स्कंद पुराण में 'पंचगौड़' और 'पंचद्रविड़'। भीमदेव द्वितीय के पाटन अभिलेख में रायकवाल सकराय माता अभिलेख में 'दध्य' या 'दाहिमा', विक्रम संवत 982 के पुष्कर अभिलेख में 'पुष्कर' और अन्य अभिलेखों में 'आवसथिक', 'पुरोहित', 'द्विवेदी', 'त्रिवेदी', 'चतुर्वेदी', 'मिश्र', 'दीक्षित' और त्रिपाठियों का उल्लेख मिलता है। जिस किसी परिवार के पूर्वज इनमें से किसी वर्ग के थे उनकी संतान अपने को उसी जाति का कहने लगी। इसी प्रकार बंगाल में ब्राह्मणों में राढीय, वारेंद्र, कुलजी आदि उपजातियां थी। कुलजियों में भी व्यास, पराशर, कौंडिन्य और सप्तशती नाम की शाखाएं थीं। बिहार में ब्राह्मणों की मैथिल, शकद्वीपी (गयावाल या मग), उत्तर प्रदेश में कन्नौजिया और सरयूपारी, कश्मीर में सिंहपुर मठ में द्राविड़ आदि उपजातियां बन गई थीं। तुर्क अफगान आक्रमणों से बचने के लिए कुछ उदीच्य ब्राह्मणों ने उत्तर प्रदेश से भाग कर गुजरात में शरण ली। नगर ब्राह्मणों ने बहुत धन संपत्ति इकट्ठी कर ली थी। उत्तर प्रदेश और कश्मीर में वे सामंत हो गए थे और 'ठक्कर' कहलाते थे। उनमें कुछ शिल्पी भी थे जिनका कार्य शूद्रों का समझा जाता था। ब्राह्मणों की उपजातियों का आधार बहुधा वह प्रदेश था जहाँ से उनके पूर्वज आए थे।

विवेच्य काल में राजस्थान में भोनमाल धार्मिक और सांस्कृतिक महत्त्व का नगर था। संभवतः इसी कारण 'श्रीमाल' ब्राह्मण अपेन को अन्य ब्राह्मणों से श्रेष्ठ समझते थे। गुजरात में आनंद नगर भी संभवतः सांस्कृतिक महत्त्व का स्थान था। इसीलिए 'नागर' ब्राह्मणों का उस प्रदेश में बहुत आदर था। मुसलमानों के आने से प्रांतीयता पर आधारित इन संकीर्ण विचारों को प्रोत्साहन मिला। ब्राह्मणों ने रक्त शुद्धि पर अत्यधिक बल दिया। उन्होंने रहन-सहन और खान-पान के विषय में अनेक प्रतिबंध लगाए जो 'कलिबज्य' कहलाते हैं। अंतरजातीय विवाहों पर भी प्रतिबंध लगा दिया। अपरार्क के अनुसार ब्राह्मण को गायक, नट, वैद्य, सुनार, लुहार, शस्त्र बेचने वाले, दर्जी, धोबी, शराब बनाने व बेचने वाले, तेली, चारण, बढ़ई, ज्योतिषी, घंटा बजाने वाले, गांव के अधिकारी, चमार, कुम्हार, पहलवान, बांस की वस्तुएं बनाने वाले, आदिम जाति के साहूकार और ऐसे पुरोहित को जो पूरे गांव में पुरोहित का कार्य करता हो भोजन नहीं करना चाहिए। किन्तु इस काल में हरिचंद्र प्रतिहार ने जो ब्राह्मण था एक क्षत्रिया से और राजशेखर ने जो स्वयं ब्राह्मण था एक चाहमान राजकुमारी से विवाह किया। इसका यह अर्थ है कि इस काल में भी कुछ अंतरजातीय विवाह होते रहे। जो कोई ब्राह्मण विदेश यात्रा करता था उसे जाति से बहिष्कृत कर दिया जाता था। ब्राह्मण इस काल में किसी शूद्र, दास या ग्वालिये के घर भोजन नहीं कर सकता था। यद्यपि गुप्त काल में अपने ग्वालिये और शूद्र के यहाँ भोजन करने की अनुमति थी। जिन ब्राह्मणों का कार्यवश मुसलमानों से संपर्क हुआ उन्हें अन्य ब्राह्मणों से नीचा समझा जाने लगा। जो ब्राह्मण दूर प्रदेशों को जाते थे उन्हें भी अपवित्र समझा जाने लगा। उन ब्राह्मणों को जो किसी व्यवसाय द्वारा जीविकोपार्जन करते थे, जाति से बहिष्कृत कर दिया जाता था। इसी प्रकार ब्राह्मणों में दार्शनिक और धार्मिक प्रश्नों पर मतभेद होने पर अनेक उपजातियां बन गई। इस काल में सूर्य की पूजा करने वाले कुछ व्यक्ति ईरान से भारत आए थे। वे 'मंग' या 'भोजक' कहलाते थे। उन्हें शक-द्वीपी ब्राह्मण कहा गया है। विवेच्य काल में भी कर्म के आधार पर जाति निर्धारण की परंपरा कुछ अंश में ब्राह्मणों में भी विद्यमान थी। रोमिला थापर का मत है कि पंजाब के मैदान में ब्राह्मणों का वहां के समाज में कभी भी महत्वपूर्ण स्थान न रहा। वहां के निवासी जैसे कि मद्र के निवासी ब्राह्मणों द्वारा प्रतिपादित धार्मिक कृत्यों को नहीं करते थे और वर्जित सामाजिक कर्मों को करते थे। केवल पहाड़ी प्रदेशों में ब्राह्मणों द्वारा प्रतिपादित धार्मिक कृत्य लोक-प्रिय हो सके।

कालान्तर में अनेक प्रकार के ब्राह्मण समाज में हो गए, जो स्थान-भेद के कारण विभिन्न नामों से जाने गए। मध्ययुग तक उनके 34 प्रकार मिलते हैं- नागर, राजर, उदवट, भटनागर, सिंणोरा, सांचोरा, दसोरा, उदबर (गोंडा) साहांद्रा (सिवोद्रां), नागन्द्रा (नागोद्रा), रोड़वाल, खेड़ावाल, इटावाल, पल्लीवाल, श्रीमाल, गोलवाल, चौबीसा, लोडी सीखा (सिखा), बड़ी साखा, मथुरिया, सिनोडिया, कन्होजिया, वालिमिया, श्रीगोड, गुजरगोड़, गोड़ मेवाड़ा, चितोड़ा, कन्हड़ा, सारस्वत, उदिच, घेणोजा, तंदुआणा, मालवीय आदि। हेमचन्द्र ने 'कलिंग ब्राह्मण', 'सुराष्ट्र ब्राह्मण', 'अवन्ति ब्राह्मण', काशिब्राह्मण' आदि स्थान-नाम पर ख्यात ब्राह्मणों का उल्लेख किया है। इसके अतिरिक्त उत्तर भारत के कान्यकुब्ज, सरयूपारी, धनाढय, शाकलद्वीपी, मैथिल, गौड़ आदि विभिन्न ब्राह्मणों की श्रेणियाँ हैं।

8वीं तथा 9वीं शती ई० के पश्चात राजस्थान के अधिकतर राजपूत शासकों ने अपने को सूर्यवंशी या चन्द्रवंशी क्षत्रियों की सन्तान सिद्ध करने का प्रयत्न किया। जैन लेखक सोमदेवसूरि (दसवीं शती ई० का उत्तरार्ध) ने क्षत्रिय के विशिष्ट कर्तव्य प्राणियों की रक्षा, शस्त्र द्वारा जीविकोपार्जन, सत्पुरुषों का आदर, दीन-दुखियों का उद्धार और युद्धभूमि से न भागना बतलाए हैं। विवेच्य काल में राजपूतों की क्षत्रियों में गणना कर ली गई। उन सबकी उत्पत्ति क्षत्रियों से नहीं हुई थी।

पूर्वमध्य युग तक क्षत्रियों की 36 प्रकार हो गये थे। राजतरंगिणी में भी इनकी संख्या 36 ही बतायी गई है।

'सभाश्रृंगार' में भी 36 प्रकार के क्षत्रियों का वर्णन किया गया है परमार (पमार), राठौर, चौहाण, गहिलोत, दहिया, सेणचा, बोरी (बीर), बगछा (काषा), सोलंकी, सीसोदिया, खेरमोरी (खयरमोरी), नाकुंभ (निकुंभयक), गोहिल (गहिलोत, दिया), पड़िहार, चावड़ा, झाला (भाला), छूर, कागवा (गवा), जेठवा, रोहर वूस, (छूसा), बोड़र (बारड़), खींची, खरपड़, डोडिया, हरिअड़, डाभी, तूँअर, कोरड, गौड़, मकवाणा, यादव, कछवाहा, भाटी, सोनिगरा, देवड़ा और चन्द्रावत। पूर्वमध्य युग तक उपर्युक्त क्षत्रिय राजकुलों के अतिरिक्त क्षत्रियों के और भी प्रकार हो गये थे। मागध क्षत्रिय, इक्ष्वाकु क्षत्रिय, भोज क्षत्रिय जैसे क्षत्रिय प्रकारों का वर्णन हेमचन्द्र ने किया है। चंदेल, गहड़वाल आदि और भी राजपूत जातियाँ थी। इनके अतिरिक्त उत्तर भारत में सूर्यवंशी, चंद्रवंशी, रघुवंशी आदि प्राचीन क्षत्रिय जातियाँ भी रही हैं।

राजपूतों में हूण आदि कुछ विदेशी जातियां भी मिल गई थीं किंतु इसका यह अर्थ नहीं कि सभी राजपूत विदेशी थे। सभी राजपूत सूर्यवंशी या चंद्रवंशी क्षत्रियों की संतान भी नहीं थे। कई राजपूत वंशों की उत्पत्ति ब्राह्मणों से हुई थी। समाज ने उन सभी व्यक्तियों को क्षत्रिय स्वीकार कर लिया। जिन्होंने देश की रक्षा में योद्धा के रूप में भाग लिया और भारतीय संस्कृति की प्रगति में योगदान किया। जो जनजातियां पूर्णतया अपने मूल को भूल गई थीं और हिंदू समाज का अभिन्न अंग बन गई थीं उन सभी ने सूर्य, चंद्रमा, अग्नि और समुद्र से अपनी उत्पत्ति बतलाकर अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करने का प्रयत्न किया। इस प्रकार राजपूतों या क्षत्रियों में जाति या जन्म का सिद्धांत इतना प्रबल सिद्ध नहीं हुआ जितना कि गुण और कर्म के आधार पर वर्ण का।

इब्न खुर्ददवा के वर्णन से ऐसा प्रतीत होता है कि क्षत्रियों में भी दो वर्ग थे। संभवतः प्राचीन राजवंशों की संतानों को उसने सत्क्षत्रिय कहा है और साधारण क्षत्रियों को क्षत्रिय। संभवतः समाज में सत्क्षत्रियों की ब्राह्मणों से भी अधिक प्रतिष्ठा थी। संभवतः क्षत्रियों में से कुछ ने व्यापार और कृषि करके जीविकोपार्जन प्रारंभ कर दिया था। समाज में साधारण क्षत्रियों की अपेक्षा सत्क्षत्रियों की अधिक प्रतिष्ठा थी।

वैश्यों पर वर्ण-सिद्धांत का प्रभाव अधिक पड़ा। राजस्थान के वैश्यों में अग्रवाल, माहेश्वरी, जायसवाल, खंडेलवाल और ओसवाल सभी अपनी उत्पत्ति क्षत्रियों से बतलाते है। इसका यह अर्थ है कि उनकी वैश्यों में गणना होने का आधार वर्ण था क्योंकि यह परिवर्तन उनके चरित्र, व्यवसाय, सामाजिक और सांस्कृतिक विकास के आधार पर हुआ। इसका मुख्य कारण यह था कि वे अहिंसा के सिद्धांत के अनुयायी और शाकाहारी हो गये थे।

वैश्य अथवा वणिकों के भी इस युग तक अनेक प्रकार बन गए थे। इनके 84 प्रकार मिलते हैं- श्री श्रीमाल, श्रीमाली, ओसवाल, पोरवाल, पल्लीवाल, बघेरवाल, दिसावाल (देसवाल), मेड़वाल, खंडेलवाल, अगरवाल, जैसवाल, रोझवाल, डींडूवाल, कठोड़ा, सूराणा, सोनी, लाढ, मोठ, भागद्रा, नागद्रा, नागर, नीमा, हरसोला, नरसिंघपुरा, दसोरा, मेवाड़ा, आमेटा, मेड़तिया, सोरठिया, बीयाड़ा (बायड़ा), खडायता, सांडेरा, भटेरा, कुभा, धाकड़ (थाकड़) चीतोड़ा, लाडूआ, हरसोरा, हूबड़, नागोरा, जलोरा, साचोरा, वघनोरा, सोझीता, वाल, कपोला आदि।

वैश्यों में भी अनेक उपजातियां बन गई थीं जैसे कि घर्कट, प्रागवाट और श्रीमाल। भविष्यतकथा का लेखक धनमाल घर्कट जाति का था। प्रागवाटो के पूर्वज पश्चिमी राजस्थान में प्राक देश के निवासी थे। वैश्यों की धूसर उपजाति का उल्लेख नवीं शती ई० के एक अभिलेख में है।

शूद्रों में भी वर्ण-सिद्धांत का अधिक प्रभाव पड़ा। शूद्रों में अनेक संकर जातियों, किसानों, शिल्पयों की गणना की गई है। इस काल के अभिलेखों में कुम्हारों, मालियों, तमोलियों, संगतराशों, शराब बनाने वालों और तेलियों को शूद्र कहा गया है। विवेच्य काल के साहित्य में सुनारों, बढ़इयों, कसेरों, नाइयों, गड़रियों, दर्जियों, कहारों और अहीरों को भी शूद्र कहा गया है। बंगाल में सत्शूद्रों और असत्शूद्रों की सामाजिक स्थिति में बहुत अंतर हो गया।

शूद्रों में जातियों की संख्या में अभिवृद्धि सर्वाधिक दिखायी देती है। प्रतिलोम व अनुलोम विवाह तथा वैध-अवैध सम्बन्धों के परिणाम स्वरूप अनेक मिश्रित जातियाँ समकालीन समाज में उत्पन्न हुई। अनेक जनजातियों तथा पहाड़ी जन जातियों को भारतीय समाज में शूद्र वर्ण के अन्तर्गत सम्मिलित कर लिया गया। अभिधान चिन्तामणि में शिल्पकारों को श्ूाद्रों के अन्तर्गत रखा गया है।

विवेच्य काल के स्मृतिकारों ने धोबियों, चमारों, नर्तकों, वरुडों, मछुओं, मेड़ों और भीलों की गणना अंत्यजों में की है। कुवलयमाला में चांडालों, भीलों, डोमों सूअर पालने वालों और मछुओं की गणना अंत्यजों में की गई है। इस गंथ में लेखक का मत है कि इन लोगों के जीवन में धर्म, अर्थ और काम का कोई महत्त्व नहीं है। इसका अर्थ है कि सांस्कृतिक दृष्टि से उनका स्तर बहुत नीचा था। समराइच्चकहा में धोबियों, चमारों और बहेलियों को भी अंत्यज कहा गया है।

गुप्तोत्तर काल में जाति के रूप में कायस्थो का उदय सामाजिक परिवर्तन की दृष्टि से एक महत्वपूर्ण घटना है। कायस्थ जाति के लोग मूल रूप से राजकीय सेवा से सम्बद्ध रहे हैं। उनका सर्वप्रथम उल्लेख याज्ञवल्क्य ने 'लेखक' के रूप में किया है। किन्तु उनका गुप्तकालीन अभिलेखीय प्रमाण भी मिलता है।उनका प्रधान कार्य केवल लेखकीय ही नहीं होता था बल्कि वे लेखाकरण, गणना, आय-व्यय और भूमिकर के अधिकारी भी होते थे। हरिषेण (दसवीं सदी) ने उनके लिए 'लेखक' और 'कायस्थ' दोनों शब्दों का प्रयोग किया है। राजपूतकालीन लेखों में भी उन्हें कायस्थ-लेखक के रूप में ही विवृत किया गया है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि हिन्दू समाज में 12वीं सदी तक अनेकानेक जातियाँ हो गईं, जो पेशे के साथ-साथ आचार-विचार में भी एक दूसरे से अलग थीं। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य जैसी उच्च जातियाँ निम्न पेशा अपनानेवाली जातियों से प्रायः अलग-अलग रहती थी। शास्त्रकार विष्णु ने यह व्यवस्था दी कि अगर इन तीन उच्च जातियों के सदस्य किसी बढ़ई, लोहार, सोनार, गन्ने के रस या अन्य द्रव पदार्थ के व्यापारी, तेली, बुनकर, रँगरेज, बेत का कार्य करने वाले या धोबी से भोजन ग्रहण करते हैं, तो उन्हें प्रायश्चित स्वरूप तप करना पड़ता था। निश्चय ही भेद-भाव और उच्च निम्न की यह भावना समाज में कठोर रूप से व्याप्त थी। जाति-भेद में कभी भी उदारता का लेश मात्र नहीं था। निम्न जातियों को न राजनीति में भाग लेने का अधिकार था, न सामाजिक उत्सवों में। वे न शिक्षा प्राप्त कर सकते थे, न अपना पेशा परिवर्तित कर सकते थे। वे अपनी निम्न स्थिति में ही रहने के लिए बाध्य थे। अपनी इच्छा और आकांक्षा को दबाकर वे पशुवत् जीवन व्यतीत करते थे।

पूर्वमध्यकाल में उत्तर भारत में मुसलमानों का आगमन प्रारम्भ हो गया था। भारतीय राजनीति तथा समाज में उनकी उपस्थिति प्रभावकारी हो गयी थी। आठवीं शताब्दी में मुहम्मद बिन कासिम ने सिन्धु के दाहिर सेन को पराजित कर दिया। धीरे-धीरे कच्छ काठियावाड़ उत्तरी गुजरात और दक्षिणी राजस्थान पर मुस्लिम आक्रमण हुए। यहाँ पर मुसलमान भी बसने लगे। राष्ट्रकूट नरेशों ने अपने राज्य के नगरों में मुसलमानों को बसाया। अपने राज्य के नगरों में इन्द्र तृतीय ने प्रशासक के पद पर भी नियुक्त किया। महमूद गजनवी तथा मुहम्मद गोरी के आक्रमण के बाद मुसलमान भारत में बसने लगे। कुछ निम्न जाति के हिन्दू भी धर्म परिवर्तन करके मुसलमान बन गये। देवल स्मृति में बलात हिन्दुओं को मुसलमान बनाये जाने पर उनके पुनः हिन्दू धर्म में आने के लिये प्रायश्चित विधान की व्यवस्था की गयी थी यह इस बात का प्रमाण है कि विवेच्य काल में हिन्दुओं का एक बड़ा वर्ग मुस्लिम धर्म स्वीकार कर रहा था। मुसलमानों में भारतीय हिन्दू समाज के व्यवसायिक वर्ग जैसे नाई, धोबी, दर्जी, जुलाहे आदि जातियों का समायोजन हो गया। अजमेर नागपुर, कन्नौज, विलाग्राम, बहराइच तथा बनारस इत्यादि में मुस्लिम परिवारों के होने के साक्ष्य उपलब्ध होते है।

विवेच्य काल में भूमि अनुदान के परिस्थितिस्वरूप जनजातीय क्षेत्रों में ब्राह्मणों के प्रवेश के कारण अन्त्यजो की संख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि हुई। चर्मकार, व्याध, रजक, कुम्भकार, लोहकार, सुवर्णकार, तन्तुवाय तथा चण्डाल आदि अन्त्यज जातियाँ उल्लेखनीय है।

गुप्तोत्तर काल में अनेक धर्म जातियों के रूप में प्रयुक्त होने लगे। शैव वैष्णव, बौद्ध और जैन अनेक सम्प्रदायों में बटे थे। जो कालान्तर में जाति के रूप में आचरण करने लगे।

निष्कर्ष

पूर्वमध्यकाल में भारतीय समाज में जातियों की संख्या में वृद्धि सर्वाधिक महत्वपूर्ण सामाजिक परिवर्तन था। जातियों की संख्या में वृद्धि व्यवसाय स्थान क्षेत्र आदि के आधार पर हो रही थी। मुसलमानों के बाह्य आक्रमण से तथा समाज की आन्तरिक अव्यवस्था ने पारस्परिक श्रेष्ठता शौचाचार, धार्मिक सक्रियता आदि ने नई जातियों के उत्पन्न होने के लिए अनुकूल कारक उपस्थित किया। अनुलोम प्रतिलोम वैवाहिक सम्बन्ध के अतिरिक्त वैध तथा अवैध स्त्री पुरुष सम्बन्ध ने अनेक ऐसी मिश्रित जातियों को जन्म दिया जिन्हें चातुर्वर्ण्य व्यवस्था में नयी जाति के रूप में मान्यता प्राप्त हुई।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. छां० उ०, *5.10.7,* महाभारत, *12.296, 5-9*
2. महाभारत, वनपर्व, *80.31-33*
3. गौ०घ०सू०, *21.6-10, 18.24, 4.14,* वौ०घ०सू०, *1.9.3,* आ०घ०सू०, *1.2.4.9.5*
4. मनु०, *10.40*
5. गौ०घ०सू०, *1.8.3,* प्रसूतिरक्षणमसंकरो धर्मः
6. हिस्ट्री ऑफ धर्मशास्त्र, *2,* पृ० *-59*
7. हिस्ट्री ऑफव बंगाल, पृ० *-567*
8. राजतरंगिणी, *7.1617,* प्रख्यापयन्तः संभूतिं षट्त्रिंशति कुलेषु ये। तेजस्विनी भास्वतोपि सहन्ते नोच्चकैः स्थितिम्।।
9. किरातार्जुनीयम्।
10. सदुक्तिकर्णामृत, *290*
11. पृथ्वीराजविजय, *6.224,* यः कोऽपिवा साहसी लोक यत्यास्ति वा क्षत्रियतावावा।
12. दशरथ शर्मा, राजस्थान थ्रू दि एजिज, पृ० *442-443*
13. अपटार्क, पृ० *1177-79*
14. सभाशृंगार, पृ० *149*
15. शब्दानुशासन, *5.2.11, 7.3.107*
16. नीतिवाक्यामृत, *7,8*
17. राजतरंगिणी, *7.1617*
18. सभाशृंगार, पृ० *-149*
19. शब्दानुशासन, *6.1.116*
20. इलियट और डाउसन जिल्द, पृ० *16*
21. दशरथ शर्मा, 'राजस्थान थ्र दि एजिज' पृ० *-438*
22. सभाशृंगार, पृ० *147-98*
23. दोलत सिंह, 'प्रागवाट जाति का इतिहास, प्रस्तावना अगर चन्द्र नहटा
24. वृजनारायण शर्मा, 'शोसल लाइफ नार्दन इण्डिया, पृ० *-52*
25. दशरथ शर्मा, 'राजस्थान थ्रू दि एजिज', पृ० *433-434*
26. अत्रिस्मृति, *199,* यम स्मृति, *33*
27. कुवलयमाला, पृ० *40* पंक्ति *29*
28. उद्धृत, राजस्थान थ्रू दि एजिज, पृ० *-430*
29. मिताक्षरा, याज्ञ० *1.335,* कायस्थगणका लेखकाश्चर
30. जर्नल अव यू०पी० हिस्टारिकल सोसाइटी, *1946,* पृ० *81-82,* बृहत्कथाकोश
31. स्मृतिसंग्रह, पृ० *34,122,392*
32. हिन्दू सोसाइटी ऐट क्रासरोड्स, पृ० *25-26*
33. आर०सी० मजूमदार एंश्येन्ट इण्डिया, पृ० *267,* ए०एस० अलटेकर, दी एज आफ इम्पीरियल कन्नौज, पृ० *-17*
34. आर०सी० मजूमदार द स्ट्रगल ऑफ अम्पायर, पृ० *498*
35. के०एस० निजामी सम आस्पेक्टस ऑफ रेलिजन एण्ड पालिटिक्स इन एंश्येन्ट इण्डिया, पृ० *-143*
36. आर०एस० शर्मा, वही, पृ० *-25*